अपने हाथ विज्ञान
एक पायलट प्रोजेक्ट

रोशनी कसाड

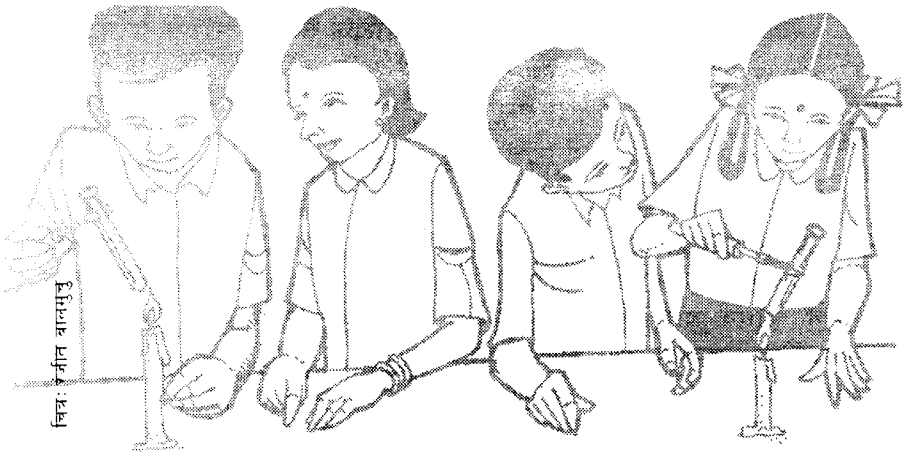

चित्र: रंजीत बालमुचु

'अपने हाथ विज्ञान' परियोजना का लक्ष्य हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में अधिक व्यावहारिक शिक्षा को पिरोना है। गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षा न सिर्फ मस्ती और उल्लास भरी होती है परन्तु उससे छात्र असल जीवन में विज्ञान के उपयोगों को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं। यह रिपोर्ट छह महीने (अक्टूबर 2003 से अप्रैल 2004) के अनुभव पर आधारित है जिसके दौरान मैंने गुजरात के पाटण ज़िले के पांच ग्रामीण उच्च विद्यालयों में काम किया। इस अध्ययन में मेरा पूरा फोकस आठवीं व नवमीं

कक्षा के विद्यार्थियों पर रहा; परन्तु उसमें विज्ञान के शिक्षकों को अनुभवजन्य व गतिविधि आधारित शिक्षा पर ज़्यादा ज़ोर देने के लिए प्रेरित करना भी एक प्रमुख हिस्सा था। वर्तमान शिक्षण पद्धति का समालोचनात्मक अवलोकन और व्यावहारिक विज्ञान सिखाने के मेरे अपने प्रयास इस अध्ययन का हिस्सा हैं।*

दूसरे भाग में छोटे समूहों में सीखने की प्रक्रिया तथा तीसरे भाग में मेरे निष्कर्ष और मेरी अनुशंसाएं हैं। मुझे यकीन है कि शिक्षक प्रशिक्षण में थोड़ी और मशक्कत करके हम शिक्षा पद्धति को विद्यार्थियों के अनुकूल, बौद्धिक रूप से अधिक प्रेरक व आनंददायक बना सकते हैं।

भाग-1
वर्तमान शिक्षण पद्धति बाबत अवलोकन **

पढ़ाने के प्रमुख तरीकों तथा कक्षा के वातावरण को समझने की दृष्टि से मैंने अधिकांशतः हाईस्कूल (कुछ प्राथमिक विद्यालय तथा कॉलेजों की भी) कक्षाओं का अध्ययन किया।

सब जगह पढ़ाने का तरीका मुख्यतः व्याख्यान-आधारित ही मिला। मास्साब सीधे कोर्स की किताब से पढ़कर बच्चों को सुनाते। बहुत-सी कक्षाओं में छात्रों को शिक्षक द्वारा बोले गए हर शब्द को रट्टा लगाकर याद रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता। शिक्षक और छात्रों ने बार-बार मुझे यही बताया कि आखिरी मकसद है परीक्षा में अधिक-से-अधिक नम्बर पाना।

व्याख्यान आधारित कक्षाएं

पढ़ाने के व्याख्यान आधारित तरीके का एक प्रमुख उदाहरण मैंने 'सामाजिक अध्ययन' की कक्षा में देखा। 45 मिनट के पीरियड को कुछ इस तरह बांटा गया था। अध्यापक किताब से बोर्ड पर एक अध्याय का सारांश लिखते, छात्र बोर्ड पर लिखी इबारत की नकल

* *इस बात का ध्यान रखा गया जाए कि मेरे अवलोकन व आकलन केवल ग्रामीण व अर्ध सरकारी शालाओं के साथ किए गए काम पर आधारित हैं।*

** *मेरे द्वारा किए गए तमाम अवलोकनों में कक्षा अनुशासन तथा शैक्षिक बेईमानी के प्रति अध्यापकों व छात्रों का रवैया भी शामिल है। लेकिन इस रिपोर्ट के दायरे से बाहर होने के कारण उन्हें यहां शामिल नहीं किया गया है।*

अपनी कॉपी में उतारते, एक कतार में बैठे 8-10 विद्यार्थी बारी-बारी से उस इबारत को ज़ोर-शोर से शब्दशः दोहराते, और यह समूची प्रक्रिया फिर एक नई इबारत के साथ दोहराई जाती। फिर अध्यापक ने मुझे बताया कि वे 'मध्यम स्तर' की बुद्धि वाले विद्यार्थी थे जो किताब में लिखी हर चीज़ याद नहीं कर सकते। इसलिए वे सारांश लिखकर रटवाते हैं ताकि उन्हें वे इम्तहान में हूबहू लिख सकें। मेरे यह बताने पर कि लिखी गई बात को छात्र सिर्फ कंठस्थ कर सकते हैं, ज़रूरी नहीं कि वे उसे समझें भी, उन्होंने मुझसे सहमति जताई। फिर अगले ही पल उन्होंने फिर से वही तर्क दिया कि ये 'मध्यम स्तरीय' छात्र हैं जो खुद होकर सीख और समझ नहीं सकते।

मेरे अध्ययन कार्यकाल में हफ्ते में एक बार विज्ञान शिक्षक अपने विद्यार्थियों को प्रयोगशाला में एक ऐसे अभ्यास के लिए ले जाते जो पूर्णतः व्याख्यान-आधारित नहीं था। इन प्रयोगशाला अभ्यासों में शिक्षक प्रायः चालीस से भी अधिक छात्रों से घिरे, कोई प्रदर्शन कर रहे होते। और चालीस छात्र एक नज़र देख पाने की कोशिश करते कि उस प्रयोग में भला क्या कुछ घट रहा है। अमूमन, छात्रों के हाथों में न कोई उपकरण होता और न ही वे अपने हाथों प्रयोग कर रहे होते। छात्रों को अगर अपने हाथों से वे प्रयोग करने दिए जाते तो शायद वे वैज्ञानिक सिद्धांतों को बेहतर ढंग से समझ पाते। सिर्फ कोरे सिद्धांत पढ़ने के बजाए अपने हाथों करके सीखना वैसे भी कहीं ज़्यादा आनंद-दायक अभ्यास होता है।

'सामाजिक अध्ययन' की कक्षा ही नहीं, जितनी भी कक्षाएं मैंने देखी लगभग सभी में शिक्षक विद्यार्थियों को जानकारी देते और विद्यार्थियों से अपेक्षा होती कि वे उसे रट भर लें। फिर चाहे कुछ समझ आए, न आए। कभी-कभार ही अध्यापक विद्यार्थियों को सवाल पूछने को उकसाते या फिर कक्षा में कही/लिखी गई बात पर मनन कर अपना मत प्रस्तुत करने को कहते। छात्र प्रायः निष्क्रिय ही बने रहते।

गलतियों से सीखते छात्र

कक्षा का माहौल ज़्यादातर दमघोंटू और बेमज़ा होता। अध्यापक न तो गलतियां ही बर्दाश्त करते, न ही गलत जवाब। मैंने अध्यापकों को छात्रों से अक्सर यह कहते पाया कि जब तक उन्हें सही उत्तर न पता हो वे कक्षा में न बोलें। ऐसे में छात्र अपने आप को काफी बंधा हुआ महसूस करते। थोड़े समय बाद, मेरे साथ काम कर रहे एक अध्यापक को महसूस हुआ कि विद्यार्थियों को गलती करने की छूट देनी चाहिए ताकि वे उनसे सीख सकें। हम इस पर भी सहमत हुए कि

छात्र द्वारा सही उत्तर दिए जाने के बाद भी अक्सर उसे यह नहीं पता होता कि वही उत्तर सही क्यों है। जबकि इसके उलट अपनी गलती सुधारने वाले छात्रों की समझ कहीं बेहतर होती है, क्योंकि वे उस समूची सोच प्रक्रिया से गुज़र चुकने के चलते उत्तर के तर्क को अच्छे से ग्रहण करते हैं।

कक्षा में प्रश्न

अध्यापक-छात्र संवाद से जो एक खास बात नदारद थी वह थी छात्रों द्वारा प्रश्न पूछना। प्रोजेक्ट की शुरुआत में मैंने आठवीं व नवमीं कक्षा के छात्रों के साथ सवाल पूछने के महत्व पर एक अभ्यास किया। कक्षा में विद्यार्थी दो तरह के सवाल पूछ सकते हैं। एक, खुलासा करने वाले सवाल – ऐसे सवाल जिनमें अध्यापक को वह बात, वह विचार, वह अवधारणा एक बार फिर से समझाना होती है। और दूसरे, ऐसे सवाल जिनमें विद्यार्थी शिक्षक द्वारा पहले से समझाई गई बात की व्याख्या करने को कहते हैं। पहले प्रकार के सवालों में छात्रों से विनम्रता की अपेक्षा होती है ताकि वे स्वीकार कर सकें कि शिक्षक द्वारा समझाई गई बात उनके पल्ले नहीं पड़ी है। जबकि दूसरे प्रकार के सवाल छात्रों से अपेक्षा करते हैं कि वे पढ़ाई गई हर चीज़ में दिलचस्पी लें और उनमें समीक्षात्मक विश्लेषण की कुछ क्षमता हो ताकि वे उस विषय की गहराई में जाकर जांच-पड़ताल कर पाएं। मेरे यह पूछने पर कि वे सवाल क्यों नहीं पूछते, अधिकांश छात्रों का जवाब था कि प्रश्न पूछने में वे हिचक महसूस करते हैं और फिर सवाल पूछकर वे मूर्ख भी नहीं दिखना चाहते।

नई समस्याओं के प्रति हिचक

आमतौर पर छात्रों में स्वतंत्रता और आत्मविश्वास की कमी झलकी। वे अपने विचार खुलकर नहीं कहते थे और न ही समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न में वे किसी प्रकार का जोखिम उठाना चाहते थे। अध्यापक भी इसी चलन को बनाए रख रहे थे और वे छात्रों को अपने ही बूते खोजने के लिए प्रेरित न करते हुए सारे उत्तर उन्हें चम्मच से पिलाते। छात्रों को उत्तर न मालूम होने की दशा में शिक्षक जवाब खोजने की तार्किक प्रक्रिया में हर कदम पर मार्गदर्शन देने की बजाए, फटाक से उन्हें उत्तर बता देते। इस कारण छात्र मुश्किल-सी लगने वाली समस्याओं को अपने ही बल पर सुलझाने का प्रयत्न न करते हुए, अपने हाथ खड़े कर देते और मास्साब उन्हें जवाब बता देते।

ऐसे जोखिम उठाने के प्रति छात्रों की झिझक सामने आई जब मैंने आठवीं कक्षा के छात्रों से पृथ्वी की परिधि की गणना करने को कहा। मैंने उन्हें

पृथ्वी के व्यास का मान दिया और फिर परिधि के सूत्र पर हम सब एकमत हुए। इसके बाद बोर्ड पर लिखे उस समीकरण में मैंने सारे 'मान' रखे और उनसे वह सरल-सी गणना (गुणा-भाग) करने को कहा। उन सभी पांच शालाओं में जिनमें मैंने यह अध्याय पढ़ाया, हर कक्षा से तकरीबन एक - दो छात्र ही वह सवाल (समीकरण) सही-सही हल कर सके। अधिकांश छात्रों ने तो कोई कोशिश ही नहीं की, यह कहते हुए कि उन्हें इसका हल नहीं मालूम। वे बार-बार मुझसे कहते कि आप हमें इसे हल करके दिखाएं। हैरत मुझे इस बात की थी कि ये बच्चे भला ऐसा क्यों मान कर चलते हैं कि वे ऐसी समस्या नहीं सुलझा सकते जिसके लिए सिर्फ गुणा-भाग आना ज़रूरी है। शिक्षकों से बात करने के बाद मैंने जाना कि अधिकांशतः वे उदाहरणों को बोर्ड पर हल करके दिखाते और फिर छात्रों से वैसी ही समस्याएं खुद हल करने के लिए कहते। चूंकि मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया था इसलिए शायद विद्यार्थी उसी तरह का कोई भी प्रश्न हल नहीं कर पा रहे थे या फिर उसे हल करने की दिशा में अपनी हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे।

⊙⊙⊙⊙⊙⊙

भाग-2
कक्षा में पढ़ाने के साथ मेरे प्रयोग

मेरा साप्ताहिक कार्यक्रम कुछ इस तरह से बना था कि मैं चुनी हुई पांच पाठशालाओं में से प्रत्येक में एक दिन पढ़ाने में बिताती और शेष बचे एक दिन में आने वाले हफ्ते के लिए अपना पाठ तैयार करती थी। हर हफ्ते मैं दो पाठ बनाती और पढ़ाती – एक कक्षा आठवीं के लिए और दूसरा नवमीं कक्षा के लिए। सभी पांच स्कूलों में वही पाठ पढ़ाए जाते। शुरू-शुरू में मैं यह सुनिश्चित करती कि मेरे द्वारा तैयार किए गए पाठ पाठ्यक्रम के अनुरूप हों। इसके अलावा इस प्रोजेक्ट के तहत शिक्षकों ने मुझे ऐसे विषय चुनने की स्वतंत्रता दी जो पाठ्यक्रम में शामिल नहीं थे। मेरे द्वारा पढ़ाए गए ये पाठ या अभ्यास ऐसे पाठ थे जो मैंने खुद से बनाए थे या फिर जिन्हें मैंने दूसरी किताबों या इंटरनेट से जुटाई जानकारी के आधार पर तैयार किया था। मैंने नाना प्रकार के विषय चुने – जीवन की उत्पत्ति, प्रदूषण, पृथ्वी के बारे में कुछ बुनियादी तथ्य इत्यादि। हालांकि विषय बदलते रहे लेकिन मैंने हर पाठ में ऐसे अभ्यास व ऐसी गतिविधियां पिरोई जो छात्रों

को आकर्षित करें और विज्ञान सीखने के प्रति उनमें एक जोश पैदा हो।

इन गतिविधियों में कम कीमत वाली, स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री का ही इस्तेमाल होता। नतीजतन यह परियोजना व्यावहारिक, दोहराने योग्य और टिकाऊ भी बन पाई।

'अपने हाथ विज्ञान' के पाठ

छात्रों के हिसाब से वैज्ञानिक अवधारणाएं स्पष्ट करने के लिए साधारण सामग्री और सरल गतिविधियों की काफी अहम भूमिका होती है। पिन-होल कैमरे का उदाहरण ही लें जिसका प्रयोग मैंने नवमीं कक्षा के विद्यार्थियों के साथ किया। अमेरिकी स्कूलों में यह प्रयोग बहुत बार किया जाता है। इसमें लगने वाली चीज़ें भी साधारण होती हैं – टीन का डिब्बा, टेप, मोमिया या अल्पपारदर्शी कागज़, रबर बैण्ड और काले रंग का मोटा कागज़। बस इतनी-सी सामग्री से ही दस मिनट में एक सामान्य कैमरा बनाया जा सकता है। अध्यापक तो क्या, छात्र भी इस कैमरे से खेल-खेल में प्रयोग करके काफी खुश हुए जाते थे। इसके साथ ही वे प्रकाश और लेंस संबंधी महत्वपूर्ण अवधारणाएं भी समझते जा रहे थे।

मैंने नवमीं कक्षा के विद्यार्थियों के साथ वंशानुगत विशेषताओं से जुड़ा एक प्रयोग किया। शुरुआत मैंने 'जीन' (Gene) की अवधारणा के परिचय से की, जो कि अपने आप में काफी कठिन बात है। इसके लिए एक ऐसी गतिविधि चुनी जिसमें जीन के व्यवहारिक प्रभावों को परखते हुए, विद्यार्थी आनुवांशिकी की बुनियादी समझ पकड़ पाए। इसमें विद्यार्थियों को कक्षा का सर्वेक्षण करते हुए वंशानुगत विशिष्टताओं को पहचानना था। इसके बाद विद्यार्थियों से अपेक्षा थी कि कक्षा में पाई गई विशिष्टताओं की बारम्बरता का आकलन करें और फिर इनकी तुलना इस जानकारी से करें कि आम जनसंख्या में इन गुणों का अनुपात क्या पाया जाता है। इस तमाम खोजबीन में छात्रों को बड़ा मज़ा आया। इस दौरान हमने हस्त प्रधानता (यानी कि व्यक्ति खब्बू है या दाहिने हाथ से काम करने वाला है), आंखों के रंग तथा जीभ लपेट सकने के गुण (कोई व्यक्ति अपनी जीभ लम्बाई के हिसाब से मोड़ या लपेट सकता है या नहीं, यह गुण आनुवंशिकीय होता है) इत्यादि विशिष्टताओं को गिनती में लिया। कक्षा में जब भी हमने गुण में विविधता पाई, हमने उसे 'जीन्स' में परिवर्तन, के खाते में डाला। बहुत दिनों तक यह खेल चलता रहा कि विद्यार्थी मेरे पास आकर जीभ को गोल करके दिखाते और जीन की बातें करते। इस प्रकार एक मज़ेदार गतिविधि के ज़रिए छात्रों ने आनुवंशिकी जैसे

विषय में दिलचस्पी ली और इसकी अवधारणा को समझा।

छोटे समूह में सिखाई

शुरू-शुरू में मेरा पढ़ाने का तरीका अमूमन टोली आधारित पढ़ाई पर केन्द्रित रहा। मेरे पास इसका एक सुनिश्चित प्रारूप था। 5-10 मिनट विषय की प्रस्तुति और उसकी पृष्ठभूमि, इसके बाद सारे छात्र समूहों में बंट जाते और उन्हें अलग-अलग सवाल हल करने के लिए दिए जाते. और फिर पाठ के अंत में सारे छात्र फिर इकट्ठे हो जाते और अपने-अपने समाधान सारी कक्षा के साथ बांटते। मुझे यह तरीका अच्छा लगा क्योंकि अव्वल तो इससे छात्र स्वतंत्र रूप से सीखने को प्रेरित होते हैं, दूजे अपने विचार प्रकट करने में उन्हें पहले की अपेक्षा कम झिझक महसूस होती है, और तीसरे उनमें परस्पर-सहयोग की भावना पनपती है।

लेकिन मुझे जल्द ही इस तरीके की कई समस्याओं के बारे में समझ आया। एक तो यह इकलौते शिक्षक के बस की बात नहीं थी। मान लीजिए किसी कक्षा में अगर पचासेक छात्र हों तो शिक्षक के लिए यह सुनिश्चित करना काफी मुश्किल होगा कि सभी समूह लगातार एकाग्र और अर्थपूर्ण बने रहें। और अमेरिकी कक्षाओं में भी जब यह तरीका अपनाया जाता है तो प्रत्येक समूह के साथ अगली कक्षा का एक छात्र (जो कि इस तमाम प्रक्रिया से गुज़र चुका हो) नियुक्त किया जाता है, ताकि समूह में चर्चा

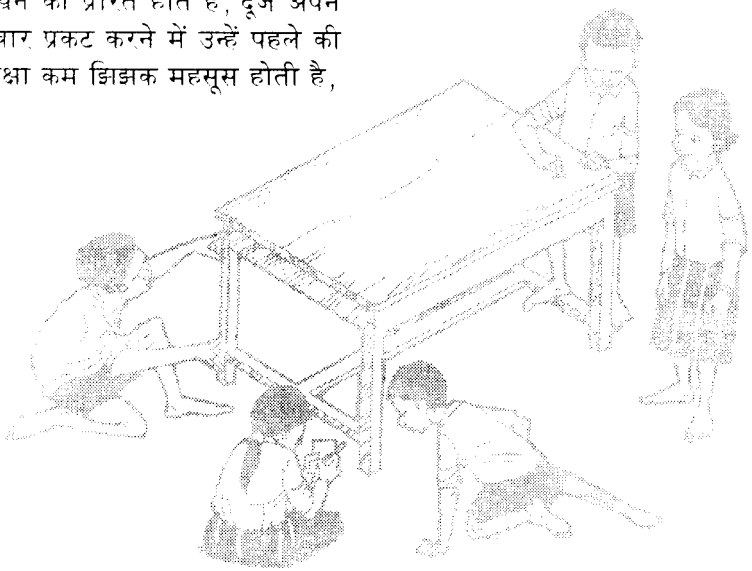

एकाग्रचित हो। इसके अलावा छात्रों को समूह में सरल कार्य करने में भी काफी परेशानी होती थी। उन्हें तो कक्षा में बताई गई या कोर्स की किताब में पढ़ी गई हर बात को कक्षा में शब्दशः दोहराने की आदत थी। फिर मेरे द्वारा दिए गए सवाल प्रायः उनसे अपने रोज़ाना के जीवन से जानकारी हासिल करने की अपेक्षा रखते थे जिसकी कि उन्हें आदत नहीं थी। इसलिए हर नए प्रकार की समस्या से उन्हें परहेज़ होता।

मैंने आठवीं की एक कक्षा में प्राकृतिक संसाधन संरक्षण का विषय भी इसी तरीके से लिया। विद्यार्थियों को टोलियों में बांटने से पहले मैंने उन्हें प्राकृतिक संसाधनों के बारे में तथा लगातार नए पैदा होने वाले व खत्म हो जाने वाले (renewable and non-renewable) संसाधनों के बीच फर्क के बारे में बताया। अपने-अपने समूहों में छात्रों को इन सवालों के जवाब देने थे।

1. अपने रोज़मर्रा के जीवन में वे कौन-कौन से संसाधन उपयोग में लाते हैं?
2. क्या इनमें से हरेक संसाधन का नवीनीकरण संभव है?
3. क्या हरेक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है?
4. यदि किसी संसाधन की उपलब्धता कम है तो हम किन-किन तरीकों से यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि वह पूरी तरह से खत्म न हो जाए?

जवाब में छात्रों ने शुरुआत में मेरे द्वारा दिए गए उदाहरण ही दोहरा दिए, बजाए इसके कि वे कुछ सोचते कि अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में वे

कौन-कौन से संसाधन इस्तेमाल करते हैं। इन संसाधनों बाबत मेरे द्वारा तथा कक्षा अध्यापक द्वारा दिए गए उदाहरणों के बावजूद छात्र अन्य संसाधनों के संदर्भ में खुद से यह तय नहीं कर पाए कि कौन-से संसाधन पहली श्रेणी में आते हैं और कौन-कौन से दूसरे वर्ग में। और जब सारी कक्षा के सामने अपने जवाब रखने की बारी आई तो ऐसा महसूस हुआ मानो उन पर दबाव है कि उन्हें याद्दाश्त के सहारे जवाब देना है। छात्र दूसरे समूहों से जवाब 'चुराते', यह सोच कर कि उनके खुद के जवाब अभी अधूरे हैं। ऐसे में जब कोई समूह अपने जवाब सारी क्लास के सामने प्रस्तुत कर रहा था तो बाकी सारे समूह अपने-अपने जवाब 'पूर्ण' करने की धुन में रमे हुए थे। उनके बीच सर्वश्रेष्ठ उत्तर देने की जैसे होड़ मची थी; और आपसी चर्चा नदारद थी जिसमें सभी छात्रों को अपनी-अपनी बात रखने और दूसरों की बात सुनने का मौका मिलता।

मेरे पास समय का भी अच्छा खासा टोटा था क्योंकि हर कक्षा के साथ सीधे-सीधे काम करने के लिए मुझे प्रति सप्ताह आधे घंटे का वक्त ही मिलता था। इतने कम समय में विद्यार्थियों को समूह में काम करने के हिसाब से दक्ष बनाना मुश्किल काम था। 'समूह में पढ़ाई' को क्रियान्वित करने हेतु बेहतर तरीका था जयंतीबेन रवि का। उन्होंने मेरे तीन स्कूलों में अलग से एक तीन-महीने का 'टोलियों में पढ़ाई' प्रोजेक्ट शुरू किया। इनमें से हरेक स्कूल के कक्षा आठवीं के एक वर्ग के विद्यार्थियों को 5-5 के मिश्रित-लिंग समूहों में बांटा गया। विभिन्न स्तर की शैक्षिक योग्यता वाले छात्रों

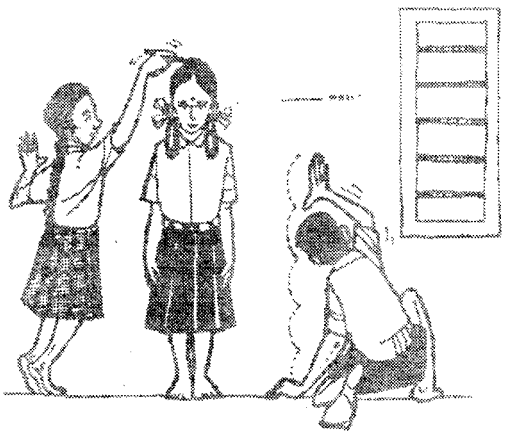

को एक साथ रखा गया ताकि सारे समूह एक समान स्तर/काबिलियत वाले रहें। शिक्षकों को निर्देश थे कि वे इन कक्षाओं को पूरे दिन प्रत्येक विषय में केवल इस तरह टोलियों में ही पढ़ाएंगे। प्रत्येक समूह में एक लीडर भी नियुक्त किया जाता जो कि बारी-बारी से बदलता था।

कुछ सुखद परिणाम

इस नए प्रोजेक्ट में मुझे मिले-जुले परिणाम दिखे। उदाहरण के लिए मैंने पाया कि भाषा की कुछ कक्षाओं में जहां पहले पूरे-के-पूरे उद्धरण अध्यापक द्वारा ही अनुवादित कर दिए जाते थे वहीं अब यह दास्तान समूहों में बंटने लगी है। कक्षा के सारे छात्र समूहों में बंट जाते। प्रत्येक समूह अपने-अपने अंश का स्वयं ही अनुवाद करता और फिर उसे पूरी कक्षा को पढ़ाता। सारे छात्र इस काम को स्वतंत्र रूप से करने में काफी हद तक माहिर हो गए थे। कुछ स्कूलों में तो अध्यापकों ने मुझे बताया कि उनका पाठ्यक्रम तो जल्दी ही पूरा हो जाएगा क्योंकि टोलियों के माध्यम से छात्र जल्दी सीख पा रहे हैं।

बहुत-सी कक्षाओं में मैंने यह भी देखा कि छात्र तो समूह बनाकर बैठे हैं परन्तु शिक्षक खड़े -खड़े पढ़ाने का वही पुराना 'चॉक-टॉक' वाला तरीका अपना रहे हैं। बहुत से शिक्षक इस उलझन में भी थे कि इस पद्धति से वे बच्चों को कैसे पढ़ाएं, क्योंकि इसकी न तो उन्हें आदत थी, और न ही उन्हें इसका प्रशिक्षण मिला था। शिक्षक अक्सर छात्रों की तरफ से कोई प्रतिक्रिया न मिलने के कारण भी परेशान रहते थे और उनकी मान्यता बन गई थी कि ये विद्यार्थी तो बस पढ़ना ही नहीं चाहते।

छोटे-छोटे समूहों में सिखाने की बजाए मैं अक्सर पूरी-की-पूरी कक्षा के साथ काम करती। मैं कक्षा को इस तरह आगे बढ़ाती ताकि सब विद्यार्थियों से प्रतिक्रिया मिल सके। जैसे-जैसे किसी पाठ के अलग-अलग चरण आते मैं अगली अवधारणा या सिद्धांत शुरू करने के बजाए छात्रों को इस बात के लिए उकसाती कि वे सोचें और कोशिश करें। इस प्रकार छात्र उस पाठ विशेष की समूची तार्किक प्रक्रिया से गुज़रते।

शुरुआत में मेरा सोचना था कि समूह में काम करने का तरीका छात्र अधिक आरामदेह पाएंगे और उनमें झिझक भी कम होगी व वे अपनी बात खुलकर कह सकेंगे। लेकिन मैंने पाया कि जब हम पूरी-की-पूरी कक्षा के रूप में पढ़ाई करते हुए आगे बढ़ते तो छात्र अपने आपको बेहतर मनः स्थिति में पाते और अपनी बात, अपने विचार भी खुलकर रख पाते; क्योंकि मैं जो भी उन्हें हर कदम पर प्रेरित

करने और उनका हौसला बढ़ाने के लिए। छोटे-छोटे समूहों में छात्र अक्सर इस तरह का समर्थन एक-दूसरे को नहीं दे पाते और बात शुरू करने का बीड़ा भी इतनी आसानी से नहीं उठा पाते। जबकि पूरी-की-पूरी कक्षा के बतौर, एक साथ काम करने के चलते, सारे-के-सारे छात्र तमाम अवधारणाओं से एक साथ परिचित होते। इसके उलट छोटे समूहों में काम करते वक्त वे अपने-आपको एकचित्त न रख पाते और नतीजतन दिया गया काम पूरा न कर पाते। मैं यह नहीं कह रही हूं कि टोलियों में पढ़ना कारगर तरीका नहीं है, बल्कि मेरे प्रोजेक्ट की अवधि कम होने के चलते मेरे लिए यह तरीका हमेशा उपयुक्त और कारगर नहीं हुआ। मेरे पास इस बात का वक्त बहुत कम था कि मैं छात्रों को सिखा पाती कि टोलियों में अच्छे से कैसे काम किया जाता है। मेरा ज़ोर 'स्वयं करने' पर कहीं अधिक था जो ज़रूरी नहीं कि टोलियों में ही हो।

विषयवार पाठ

प्रोजेक्ट की शुरुआत से ही मैंने इस बात का ध्यान रखा था कि मेरे द्वारा बनाए गए पाठ और अभ्यास वर्तमान पाठ्यक्रम के अनुरूप हों। चूंकि मैं हर स्कूल में हर हफ्ते केवल एक ही दिन पढ़ाती थी इसलिए हर हफ्ते मेरे द्वारा लिया गया विषय नया होता, इसका नाता पिछले हफ्ते मेरे द्वारा पढ़ाए गए विषय से जुड़ता हो ऐसा ज़रूरी नहीं था। इस कारण यह कह पाना मुश्किल ही होता कि पिछले हफ्ते लिए गए विषय में छात्र कितना कुछ समझ सके हैं। इसलिए मैंने विषयवस्तु आधारित पाठों का प्रयोग किया यानी कि एक मोटे-मोटे विषय के दायरे में पाठों की एक शृंखला बनाई। मैंने आठवीं के बच्चों को पृथ्वी पर आधारित पाठों की एक शृंखला पढ़ाई। इस दौरान हमने पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने, सूर्य के चारों ओर इसके परिक्रमा पथ तथा ऋतु परिवर्तन इत्यादि पर बातचीत की। ये सारे-के-सारे पाठ/विषय एक-दूसरे से जुड़े थे और इसी कारण आगे आने वाला हर पाठ पिछले पाठ में पढ़ाई गई अवधारणाओं को पुष्ट करता चलता। इसके चलते मेरे लिए यह सुनिश्चित करना आसान हुआ कि छात्रों को बुनियादी बातें तो समझ आ ही गई हैं।

मसलन हम दो छात्रों से शुरू करते जो पृथ्वी और सूर्य के बीच के संबंध को कक्षा के सामने अभिनीत करते। प्रथम पाठ में इसके ज़रिए सूर्य का चक्कर लगाते हुए अपनी धुरी पर पृथ्वी के घूर्णन का प्रदर्शन होता। (इसके पहले छात्रों को यह समझने में काफी कठिनाई आई थी।) इसी को आगे बढ़ाते हुए हमने समय या टाईमज़ोन की अवधारणा की बात की। पृथ्वी का

अभिनय कर रहे छात्र के सामने वाले हिस्से पर हिन्दुस्तान है और पीछे की ओर अमरीका – ऐसा माना गया। जैसे-जैसे 'पृथ्वी' अपनी स्थिति बदलती गई हमने भारत व अमेरिका में समय-परिवर्तन की बात पर गौर किया। पृथ्वी के आखिरी सत्र में हमने ऋतु-चक्र पर बात की जिसमें हमने पृथ्वी और सूर्य के उस प्रदर्शक मॉडल के ज़रिए ऋतुओं में होने वाले परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया। बारम्बार पृथ्वी और सूर्य का यही मॉडल दोहराए जाने पर छात्रों के मन में भी यह बात पैठ कर गई कि किस तरह से पृथ्वी व्योम में स्थित है।

इसी मॉडल के द्वारा पृथ्वी के तमाम पहलुओं पर बात करने से छात्रों के लिए एक बात तो साफ हुई कि यूं अलग-अलग से दिखने वाले सिद्धांत/अवधारणाएं किस तरह से एक-दूजे में गुंथी हुई हैं। और इसी के चलते छात्रों को तमाम संबद्ध अवधारणाओं की एक समग्र तस्वीर दिखने लगती है।

०००००००

भाग-3
निष्कर्ष और प्रमुख अनुशंसाएं

प्रोजेक्ट में छह महीने गुज़ारने के बाद मुझमें अब इतना आत्मविश्वास तो आ गया है कि किस तरह छात्रों को कक्षा में कारगर ढंग से व्यस्त रखा जाए। मैं जानती हूं कि 'खुद करके देखो' जैसी गतिविधियां और प्रयोग विद्यार्थियों को विभिन्न अवधारणाओं की समझ प्रदान करते हैं। साथ ही, 40 मिनट का पीरियड खत्म हो जाने के बाद भी उनमें यह समझ बनी रहती है।

इस परियोजना का दायरा बढ़ाते हुए अगर सारे प्रदेश में इसे लागू करना हो तो उसके लिए शिक्षकों को कक्षा में और अधिक नवाचारी बनना पड़ेगा। यह काम बिल्कुल आसान तो नहीं है। मेरे अपने पायलट प्रोजेक्ट में ही कुछेक अध्यापकों ने इन बदलावों को लेकर प्रतिरोध दर्शाया और धीमे-धीमे उनकी रुचि मेरे प्रोजेक्ट में कम होती गई। जिन अध्यापकों को मेरे पढ़ाने का ढंग मज़ेदार लगता है वे ज़रूर मेरे द्वारा बनाए गए पाठ पसंद करते हैं। लेकिन वे यह भी स्वीकार करते हैं कि अगर इतनी सारी गतिविधियां उन्हें अपनी कक्षाओं में करनी पड़ीं तो पाठ्यक्रम तो हो चुका पूरा! पर मेरे अपने अवलोकन कहते हैं कि इन गतिविधियों को शामिल करना संभव है। ऐसा किया जाए तो

लम्बे समय में 'अपने हाथ विज्ञान' का फायदा ही होता है क्योंकि इससे विज्ञान में वाकई एक दिलचस्पी पैदा होती है। जबकि शुद्धतः व्याख्यान आधारित तरीके से इतनी कामयाबी तो नहीं ही मिलती। कक्षा आठवीं व नवमीं में 'अपने हाथ विज्ञान' लागू करने के लिहाज़ से मैंने कुछ खास सिफारिशें की हैं।

प्रमुख अनुशंसाएं

1. छात्र प्रयोगों को खुद करें: जब भी कक्षा में प्रयोग करवाए जाएं तो जहां तक संभव हो, कक्षा के सभी छात्र-छात्राओं की उनमें सक्रिय भागीदारी हो। शिक्षक प्रयोग करके दिखा रहा हो और छात्र बतौर दर्शक प्रयोग देख रहे हों जैसी स्थिति न बने। बेहतर तो यही होगा कि विद्यार्थी समूहों में रहकर प्रयोग करें। इससे वे यह भी सीख सकेंगे कि दूसरों के साथ मिलकर किस तरह ज़्यादा कारगर तरीके से काम किया जाता है। इसी तरह प्रयोग के पहले विद्यार्थियों को यह बता देना कि इस प्रयोग में क्या-क्या घटित होगा – इससे बेहतर होगा कि हम विद्यार्थियों को अनुमान लगाने या अपने अनुमानों की वास्तविक परिणामों से तुलना करने के लिए प्रोत्साहित करें। शिक्षकों को चाहिए कि वे प्रयोगों के लिए विविध स्थितियां देकर विद्यार्थियों से पूछें कि वे क्या सोचते हैं, इन हालातों में क्या होगा या होना चाहिए? शिक्षक और बच्चों के बीच इस किस्म की चर्चाएं होना बेहद ज़रूरी है क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता है तो शिक्षक द्वारा प्रस्तुत किया गया प्रयोग छात्रों के सवालों-टिप्पणियों के बगैर ही सम्पन्न हो जाएगा और हो सकता है छात्र सीखने की प्रक्रिया में वास्तविक रूप से शामिल न हो पाएं।

2. अपने व्याख्यान में व्यावहारिक उदाहरणों को शुमार करें: जब कभी भी कक्षा में कोई पाठ शुरू होता है तो शिक्षक को कोशिश करनी चाहिए कि पाठ में आई अवधारणाओं का व्यावहारिक पक्ष ज़रूर उभारकर सामने रखें। इन अवधारणाओं से संबंधित जो भी उदाहरण लेते हैं वे छात्रों के रोज़मर्रा के जीवन से जुड़े हों तो बेहतर होगा। छात्रों को भी प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि कुछ उदाहरण वे भी बता पाएं। अधिकतर कक्षाओं में कुछ हद तक यह अभी भी किया जाता है, परन्तु उसमें व्यावहारिक उदाहरणों को और बढ़ाना चाहिए।

3. शिक्षकों को पाठ्य सामग्री और ट्रेनिंग मुहैया करवाई जाए ताकि वे प्रभावी ढंग से 'अपने हाथ विज्ञान' को अमल करवा पाएं: सृजनशीलता और विद्यार्थियों से संवाद बढ़ाने के लिए शिक्षकों को सामग्री के साथ-साथ प्रशिक्षण की ज़रूरत भी है। शिक्षकों को बेहतर शैक्षणिक संदर्भ

सामग्री उपलब्ध हो इसकी भी ज़रूरत दिखती है। भारत में ऐसी कुछ संस्थाएं हैं जिन्होंने विज्ञान शिक्षण संबंधी सामग्री को विकसित किया है। उदाहरण के लिए सेंटर फॉर एन्वायरनमेंट एज्यूकेशन, अहमदाबाद और होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम, मध्य प्रदेश। इसी तरह इंटरनेट भी ऐसी जानकारियों का विशाल भंडार है क्योंकि दुनिया भर के शिक्षाविद् अपनी कोशिशों और जांचे-परखे गए सृजनशील पाठों को वेबसाइट पर रखते हैं। शैक्षिक सम्मेलन भी ऐसे उपयोगी अवसर प्रदान करते हैं जहां शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्ति अपने विचार और अनुभव बांटते हैं। इतनी सारी जानकारी में से अपने काम की चीज़ें छांटना ज़रूर अपने आप में काफी जटिल और मुश्किल काम है। इसलिए अनुभवी और जुझारु शिक्षकों का एक स्रोत समूह शोध और उपलब्ध संदर्भों का संकलन कर, उसे अन्य शिक्षकों तक पहुंचा सकता है। इन सब जानकारियों के साथ-साथ शिक्षकों को गतिविधि आधारित शिक्षण के लिए प्रशिक्षण की ज़रूरत भी है क्योंकि ज़्यादातर शिक्षक कक्षा में विद्यार्थियों को स्वतंत्रता देने के पक्ष में नहीं होते हैं, जबकि गतिविधि आधारित पद्धति में विद्यार्थियों को कक्षा में काम करने की स्वतंत्रता एक अहम पहलू है। शिक्षकों को इस बात के प्रशिक्षण की ज़रूरत है कि गतिविधियों के दौरान विद्यार्थियों से किस तरह संवाद बढ़ाया जाए या उनसे बेहतर-से-बेहतर उत्तर कैसे प्राप्त किए जाएं। इन सबके साथ शिक्षक को पाठ्यक्रम में थोड़ा लचीलापन और कुछ समय की छूट भी होनी चाहिए ताकि वह पढ़ाने में ऐसी गतिविधियों का समावेश कर सके।

मैंने अपने कार्य के दौरान गुजरात की शिक्षा प्रणाली में कुछ अच्छे पहलू भी देखे हैं। मैंने कुछ ऐसे शिक्षक देखे जो विद्यार्थियों को सीखने की छूट देते हैं। मैंने ऐसे शिक्षकों के साथ काम किया जो अपने विद्यार्थियों के विकास को लेकर गंभीर थे। हालांकि ये शिक्षक और प्रभावी हो सकते हैं यदि इन्हें पढ़ाने के तरीकों के बारे में विस्तृत जानकारी मुहैया करवाई जाए; और इस बात के साफ निर्देश दिए जाएं कि वे अपना ध्यान सीखने की प्रक्रिया पर लगाएं, बजाए परीक्षा में अधिक-से-अधिक नंबर पाने के तरीकों के। कक्षा में ऐसी गतिविधि आधारित पढ़ाई को शामिल करने से विद्यार्थी शायद और बेहतर सीख पाएंगे और अपनी छिपी प्रतिभा/योग्यता को हासिल कर पाएंगे।

* * * * * * *

नवमीं कक्षा के विद्यार्थियों के साथ आनुवांशिकी के संबंध में की गई चर्चा और गतिविधि अगले पृष्ठ पर।

आनुवांशिकी - जीन एवं शारीरिक लक्षण

कक्षा: नवमीं

विषय: आनुवांशिकता

उद्देश्य: विद्यार्थियों की समझ बनाना कि शारीरिक लक्षण और जीन के बीच संबंध होता है।

पढ़ाने का तरीका: आपस में चर्चा एवं संबंधित गतिविधियां।

चर्चा एवं गतिविधियां:

– कितने विद्यार्थी अपनी जीभ को लंबाई में मोड़ पाते हैं? बोर्ड पर सूची बनाओ कि कितने विद्यार्थी ऐसा कर पाते हैं और कितने नहीं।

– शारीरिक लक्षण क्या होते हैं उन्हें समझाइए। उदाहरण के लिए – आंखों का रंग, बालों का रंग, ऊंचाई आदि।

– कोशिका विभाजन और क्रोमोसोम के बारे में चर्चा कीजिए।

– एक कोशिका में कितने क्रोमोसोम होते हैं? डी.एन.ए. क्या है?

– एक क्रोमोसोम पर कई जीन होते हैं। (उदाहरण के लिए – आंखों के रंग के लिए जीन, ऊंचाई के लिए जीन आदि)। सभी क्रोमोसोम पर मौजूद डी.एन.ए. को अगर एक के बाद सटाकर रखते हैं तो यह छह फुट लंबा खिंच जाएगा।

– कक्षा में मौजूद छात्र एवं छात्राओं की गिनती करो। डी.एन.ए. के स्तर पर छात्र-छात्राओं में क्या फर्क होता है?

– एक बार फिर जीभ को मोड़ पाने वाले उदाहरण पर लौटते हैं। यह एक आनुवांशिक विशेषता है।

– आनुवांशिक विशेषताओं के आधार पर अपनी कक्षा का सर्वे करो। इन विशेषताओं में जीभ को रोल कर पाना, लैंगिकता, प्रमुख हाथ कौन-सा है, दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में फंसाने पर कौन-सा अंगूठा ऊपर रहता है आदि हो सकते हैं। अपने अवलोकनों को बोर्ड पर लिखकर यह देखने की कोशिश करो कि इन लक्षणों की बारंबारता (फ्रीक्वेंसी) कितनी है? कक्षा में मिले आंकड़ों की तुलना आप जनसंख्या में मिलने वाले अनुपात से कीजिए।

– एक बार फिर से इस बात पर ज़ोर दीजिए कि इन सभी गुणों का आनुवांशिक

आधार है और ऐसे कुछ शारीरिक गुणों में विविधता जीन की विभिन्नताओं की वजह से होती है।

परिणाम: यह पाठ पढ़ाना काफी आनंददायी था। जैसा कि मैंने देखा सभी बच्चों को आनुवांशिक गुणों की जांच करने में मज़ा आ रहा था। जीन और डी.एन.ए. वयस्कों के लिए भी कठिन अवधारणाएं हैं लेकिन इस गतिविधि आधारित पाठ की वजह से बच्चों की इसके बारे में एक शुरुआती और व्यावहारिक समझ बन पाई।

रोशनी कसाड़: अमरीका में पढ़ाई करने के बाद इंडिकोर की फैलोशिप के तहत अक्टूबर 2003 से अप्रैल 2004 तक गुजरात के पाटण ज़िले में रहकर पांच स्कूलों में विद्यार्थियों को पढ़ाया और शिक्षकों के साथ काम किया। यह लेख उनके अनुभवों पर आधारित है।

हिन्दी अनुवाद: मनोहर नोतानी: शौकिया अनुवादक। विमर्श संस्था से संबद्ध। भोपाल में रहते हैं।

सभी चित्र: होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की कार्य पुस्तिका 'बाल वैज्ञानिक' कक्षा -6 से लिए गए हैं। चित्र **रंजीत बालमुचु** ने बनाए हैं। रंजीत आजकल बेंगलोर में रहते हैं।

किसी फलदार पेड़ के नीचे मुंह खोलकर लेटे रहिए और धरती के गुरुत्वाकर्षण बल को अपना काम करने दीजिए।